REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2022

हिंदी कथा साहित्य में उत्तर आधुनिकता की अवधारणा

प्रा. प्रमोद किशनराम घन
सहाय्यक प्राध्यापक एवं विभाग प्रमुख, हिंदी
तोष्णीवाल महाविद्यालय, सेनगाव जिल्हा हिंगोली.

सारांश:

उत्तर आधुनिकता वर्तमान युग की संस्कृति और उसके चिन्तन एवं सौन्दर्य शास्त्र को चिन्हित करने वाला एक व्यापक पारिभाषिक शब्द है। आधुनिकतावाद की भाँति इसके अर्थ भी बदल रहे हैं इसमें भी अन्तर्विरोध की कमी नहीं है। लेकिन फिर भी इस तथ्य की अवहेलना नहीं की जा सकती है। हमारा युग आधुनिकतावाद के दौर से निकल उत्तर आधुनिकतावाद में प्रवेश कर चुका है। उत्तर आधुनिकतावाद बहुआयामी और दुर्गामी प्रभाव का अनुमान इस बात से भी होता है कि फिल्म से लेकर फैशन तक साहित्य से लेकर संस्कृति तक, कामशास्त्र से लेकर कामिक्स तक, विज्ञान से लेकर विज्ञापन तक प्रत्येक वस्तु, विधा और ज्ञान इतिहास, दर्शन, समाज और मीड़िया मडोना यानि जीवन का प्रत्येक पहलू और अभिव्यक्ति भी इसके दायरे में शामिल है। यों तो उत्तर आधुनिकता पर जिस गति से विचार हो रहा है जिस रफ्तार से साहित्य में आ रहा है उसे देखकर लगता है कि कोई भी अध्ययन योजना उसकी सम्पूर्ण तस्वीर नहीं खींच सकती। जब तक हम एक लाइन खीचेंगे तब तक वह आगे चला जायेगा।

प्रतिपादन:-

उत्तर आधुनिकता अपनी सम्पूर्ण व्याख्या खुद बुना करती है इसलिए उसकी कोई सम्पूर्ण व्याख्या और सम्पूर्ण पुस्तक नहीं लिखी जा सकती है। हर एक की अपनी उत्तर आधुनिकता है और हो सकती है, फिर भी ल्योतार, जेम्सन और बौद्रिया को इसका मौलिक व्याख्याकार कहे जा सकते है। देरिदा उसके विखण्ड़न को सम्भव करते हैं। सब कुछ का अन्त नहीं होता ईश्वर मरा तो भी काम द्रुत गति के साथ चलता रहा, इतिहास और विचार मर जायेगा तो भी काम चलेगा। यह तो 'काम चलना है' साहित्य वही मौजूद है अत: साहित्य के सामने चुनौती है और नहीं भी है। एक तरह का साहित्य चुनौतियों के आगे दम तोड़ लेगा दूसरे तरह का साहित्य आयेगा। मीड़िया रचे, जन संचार रचे, चाहे कम्प्यूटर रचे, चाहे तकनीक रचे, विधाता की रचना के वर्चस्व यह नई कृत हमेषा रची जायेगी। वह सराही भी जायेगी और उसका मूल्यांकन भी होगा। उत्तर आधुनिकता आधुनिकता को खारिज कर सकता है पर जीवन की निरंतरता और उसके अबोध को खारिज करने का दम उसमें दिखलाई नहीं देता है। उत्तर आधुनिकता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए डॉ. सुधीष पचौरी का यह कथन-"आस्वस्थ सुरक्षित और आरक्षित साहित्य संस्कृति में सूधीजनों की चैन हराम है

कि यह उत्तर आधुनिकता क्या बला है? अनेक ने बिना पढ़े जाने उसे शाप दिये है। कुछ लोग चाहते हैं कि उत्तर आधुनिकता की एक मुश्त परिभाषा हो जाय और बच्चों को आसानी हो कि वे प्रष्नोत्तरी कर सके।" जॉन मैकगोवन ने अपनी पुस्तक 'पोस्ट मॉडर्निज्म एण्ड इट्स क्रिटिक्स' में उत्तर आधुनिक को विवेचित करते हुए कहा है कि-"अकादमी हलकों में १९७५ के आसपास जो 'प्रजेंट' को लेकर बहसे शुरू हुई वह पष्चिमी पुनर्जागरण और उससे पैदा हुए ज्ञानोदय के मूल सूत्रों को ही प्रष्नांकित करती थी।" देवेन्द्र इस्सर ने लिखा है कि "उत्तर आधुनिकता वर्तमान युग की संस्कृति और उसके चिन्तन एवं सौन्दर्य शास्त्र को चिन्हित करने वाला एक व्यापक पारिभाषिक शब्द है। आधुनिकतावाद की भाँति इसके अर्थ भी बदल रहे हैं इसमें भी अन्तर्विरोध की कमी नहीं है। लेकिन फिर भी इस तथ्य की अवहेलना नहीं की जा सकती है। हमारा युग आधुनिकतावाद के दौर से निकल उत्तर आधुनिकतावाद में प्रवेष कर चुका है। उत्तर आधुनिकतावाद बहुआयामी और दुर्गामी प्रभाव का अनुमान इस बात से भी होता है कि फिल्म से लेकर फैषन तक साहित्य से लेकर संस्कृति तक, कामषास्त्र से लेकर कामिक्स तक, विज्ञान से लेकर विज्ञापन तक प्रत्येक वस्तु, विधा और ज्ञान इतिहास, दर्षन, समाज और मीड़िया मडोना यानि जीवन का प्रत्येक पहलू और अभिव्यक्ति भी इसके दायरे में शामिल है।'

आम अवधारणा है कि उत्तर आधुनिकतावाद आधुनिकता आरम्भ के बारे में विचारकों के बारे में मतैक्य का अभाव है। अधिकांष विचारक उत्तर आधुनिकता को १९६० और १९७० के दषक के मध्य आरम्भ हुआ मानते हैं तो नेल्सन जैसे विचारक पिछले १५० वर्षों के विकास का परिणाम मानते हैं। लेकिन सामान्यतः उत्तर आधुनिकता के आरम्भ को ६० के दषक के मध्य ही स्वीकार किया जाता है। क्योंकि उत्तर आधुनिकता ने जिस आधुनिकता और तत्कालीन संस्कृति की तीखी समीक्षा आरम्भ से प्रस्तुत की उसका विकसित और निषेध पूरक स्वरूप एक लम्बे समय के उपरान्त उस दषक में ही जाकर स्पष्ट हो सका था। इस सम्बन्ध में देवेन्द्र इस्सर का मत है कि-"बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, राजनीति तथा कला, संगीत, वास्तुषास्त्र साहित्य और चिन्तन में जो परिवर्तन आये हैं, उत्तर आधुनिकतावाद उसको परिलक्षित करने वाला एक व्यापक लेकिन विवादास्पद परिभाषित शब्द है।"

उत्तरसदी के आरम्भिक समय में, उत्तर आधुनिकता के विचारों के सबसे पहले कला के इतिहास में मुख्य रूप से वास्तुकला में देखा गया। जहाँ यह तत्कालीन कला और आन्दोलनों के विभिन्न प्रवृत्तियों के साथ ही आधुनिक अवा-गार्द के अभिप्राय और उनकी उपलब्धियों के बीच गहरे विवाद के संदर्भ में देखा गया लेकिन आरम्भ में इसके सीमित प्रयोग के बावजूद उत्तर आधुनिकता के प्रभाव को और भी विस्तार अन्य अनुशासनों में भी देखा जा सकता है..... न कि केवल अन्य अनुभाग में इसकी व्याप्ति को बल्कि उनके बीच विभेद को समाप्त कर देने के भी रूप में उत्तर आधुनिकता की कोई निष्चित व्याख्या नहीं है। उसकी परिभाषाएँ बदलती रहती है इसकी अस्पष्टता को लेकर देवेन्द्र इस्सर ने सवाल उठाया है कि-"क्या उत्तर आधुनिकता एक मनोदषा है या माहौल? प्रवृत्ति है या परिदृष्य? फैषन, फ्रेंड या फीक? विचार है या विभ्रम? विद्रोह है या दमितों, दलितों, नारियों अल्पसंख्यकों के मुक्ति संघर्ष का नवदर्षन? आन्दोलन है या महज एक अफवाह?"

स्वातंत्र्योतार ने उत्तर आधुनिकता को विभिन्न संदर्भों में परिभाषित किया है। उत्तर आधुनिकता को परिभाषित करते हुए ल्योतार उसके तीन संदर्भों की चर्चा करते हैं। पहला अब बड़े पैमाने पर मानव मुक्ति के संदर्भ में वास्तुकला की परियोजना और सामाजिक ऐतिहासिक प्रगति के बीच कोई निकट का सम्बन्ध नहीं रहा। उत्तर आधुनिक वास्तुकला ने आधुनिक वास्तुकला की मानव जाति की सम्पूर्ण अधिकार क्षेत्र ने पुनर्निर्माण की परियोजना को त्याग दिया है। उत्तर आधुनिक वस्तुविद के पास मनुष्य की मुक्ति या उसके उद्धार का कोई दावा नहीं है, जैसा कि आधुनिकता का है। दूसरा पिछले दो शताब्दियों में स्थापित प्रगति की अवधारणा के प्रति विष्वास में आयी कमी को कोई भी महसूस कर सकता है। प्रगति की यह अवधारणा इस विष्वास पर आधारित थी कि कला, तकनीक ज्ञान या स्वतंत्रता का विकास सम्पूर्ण मानव जाति के लिए लाभदायक है लेकिन तकनीकी विज्ञानों का विकास कुप्रभावों की वृद्धि का एक माध्यम बन गया है बल्कि वह इनको समाप्त कर रहा है। यह मनुष्य की बन रही आवष्यकताओं के प्रति जबावदेह नहीं है बल्कि

इसके विपरीत मानव-अस्तित्व (व्यक्ति या समाज) हमेषा ही विकास के इस परिणाम से अस्थिर (विस्थापित) होता रहा है।

तीसरे उत्तर आधुनिकता के लिए पर्याप्त रूप में अवा-गार्द शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे सैनिक अर्थ का आभाष होता है। अवा-गार्द कलाकार या लेखक एक सैनिक की तरह था जो साहित्य की सीमाओं पर ज्ञान के अस्त्र से लड़ता था, इसलिए ल्योतार अवा-गार्द शब्द को उत्तर आधुनिकता के स्थान पर प्रयुक्त नहीं करते।

उत्तर आधुनिकता को दूसरे ढंग से देवेन्द्र इस्सर कहते हैं-"उत्तर आधुनिकता शब्द कई भिन्न अर्थों में इस्तेमाल होता चला आ रहा है। यह वर्तमान समय की विचारधारा है। मूड है। एक ऐतिहासिक युग है। सांस्कृतिक कला वस्तु है। सामाजिक अनुलक्षण है। यह सैद्धान्तिक संवाद परिभाषित परिचर्चा या वर्तमान वृत्तान्त है। क्या यह नकारात्मक रवैया है जो आधुनिकवाद के विरूद्ध उभरकर सामने आया है और उसकी समस्त सम्पदा चिन्तन दर्षन विचार धारा, व्यवस्था, दायित्व, सभ्यता और मूल्यों को चुनौती दे रहा है।"

हिन्दी साहित्य में उत्तर आधुनिकता स्थितियों की पहचान के लिए आवष्यक अवधारणाओं और विचार बिन्दुओं को एक उपयोगी क्रम में प्रस्तुत करना कठिन साध्य कार्य है, परन्तु यहाँ अपने बोध को निर्णायक मानकर और मक्खी पर मक्खी न मानकर अपने आषय को प्रस्तुत करने की कोषिष की जा रही है। इस कोषिष में अपने वर्तमान में मौजूद उत्तर आधुनिक पाठ को भी पढ़ने की कोषिष है। भारतीय साहित्य में उत्तर आधुनिक स्थितियों में दाखिल हो चुका है। हमारे अनुभव उत्तर आधुनिक बन रहे हैं, हमारी बहसों में अचेत रूप से बदले हुए जगत के चित्र साहित्य में भी आने लगे हैं।

आधुनिक औद्योगिक महानगरों के बन जाने के बाद गाँव और शहर का यह वातावरण उत्तर औपनिवेषिक भारतीय साहित्य का केन्द्रीय भाव रहा है, इन महानगरों में रहने वाले लेखकों ने उत्तर आधुनिक अनुभव की उस तकलीफ को सबसे पहले भोगा है जैसा कि मार्क्स ने कहा था और जिसे आधुनिकता और साहित्य अपनी किताब में मार्षल बर्नेन ने उधार लिया है कि हर वह चीज जो ठोस है, वाणीकृत हुई जाती है आधुनिकता और वाद में उत्तर आधुनिकवाद भारतीय भाषाओं को उन्हीं लेखकों के जरिये अपना शहरी वातावरण में अपने दैनिक दबावों की वजह से जियें, जबकि उनकी जड़े गाँव में ही रही है, अकेलापन, अस्मिता का लोप, अतीत राग, संदेह, तनाव, मोहभंग और विष्वास की कमी इत्यादि जो आधुनिकता साहित्य बोध के चिन्ह माने जाते हैं, मूलतः दो दुनियाओं की भिड़न्त से पैदा होते है। अलग-अलग लेखकों ने अलग-अलग ढंग से इस अन्तर्विरोध को सुलझाने की कोषिष की है क्योंकि कोई भी आधुनिकतावादी या उत्तर आधुनिक लेखक अब उन वाहत्तरी 'आयोजीषंस' की और लौट नहीं सकता, जहाँ शहरीपन, अराजकता, भ्रष्टाचार तथा शैतान से सम्बद्ध माना जाता है। 'पोलिफोन ए वॉयसेज इन द सीटी' नामक लेख जो 'बाम्बे मोजेक आफ मार्डन कल्चर' में संकलित है में रोषन जी सहानी ने कहा है कि-"किस तरह लेखन धरती पुत्र तथा माँ की पूर्ति की व्याधि को व्यक्त करता है और किस तरह मध्यवर्गीय चेतना के जरिये उसमें सामाजिक, राजनीतिक पदार्थ छनकर आता है जिसमें गरीबी, छुआछूत वर्ग तथा लिंग भेदी अत्याचार जैसे मसले प्रायः पालतू साफ सुथरे तथा धुँधले बना दिये जाते हैं।" जब यह युवाराष्ट्र स्वयं को पुख्ता कर रहा था तब परम्परा के भारतीय पन की जरूरत, भारतीय किसान तथा भारतीय गँवई परिवेष को उर्जास्वित करने के रूप में प्रकट हुई है। भारतीय पन, देहातीपन, सादगी, यह त्रिकोण भारतीय साहित्य और भारतीय मीड़िया के लिए एक प्रति भाव बन गया। इसके विलोम का अपना खतरा है, शहर के रूमानीकरण का खतरा। भारत के समकालीन अनुभव का कोई भी सच्चा बयान इन दो अतियों को बचाकर ही बन सकता है। एक ही रास्ता है प्रतिनिधियात्मक की बहुव्यापकता और जटिलता ताकि वह इस तनाव के लिए गाँव एक सपना है, सम्बन्धों का घोंसला है जबकि शहर उसके मजबूरी का यथार्थ है स्वतंत्र चुनाव का विषय नहीं है, यह स्थिति बेहद जटिल और अप्रत्यक्ष है।

उत्तर आधुनिक बाजार टूट-फूट, बन बिगड़, नक्षे को उसके बिगड़ाव के साथ ही कहने समझने की कोषिष है और उस पाखण्ड का पाठ कूपाठ भी है। जो भारतीय किस्म के उत्तर आधुनिक उपभोग ने सांस्कृतिक जीवन को बनाया है और यही लेखक के अपने मार्क्सवाद का पाठ कूपाठ भी साथ-साथ चलता

है। यह साहित्य का उत्तर काण्ड है यहाँ साहित्य बाजार में आ रहा है और उपभोग का हिस्सा बन रहा है, यही साहित्य का निर्णायक मोड़ है कि यहाँ साहित्य खत्म होकर फिर नये काण्ड से शुरू होता है अभाव के साहित्य की जगह 'भाव' का साहित्य शुरू होता है।

उत्तर आधुनिकता की तमाम घटनाएँ (कैपिट्लिज्म) का यथार्थ है अब नैतिक बाँधा ग्रस्त लोग कहते है कि यह खतरनाक है हिन्दी के साहित्यकारों में व्याप्त हुआ डर इसी ना समझी से पैदा हो रहा है। मुक्त बाजार विश्वबाजार नया यथार्थ है, साहित्य का पहला काम है उसे समझने का चुनौती देना तभी सम्भव है, जरूरी है कि हम विष्व बाजार के यथार्थ को पहचाने। हिन्दी के ढ़ेर सारे लिट्टेरी कलर्कों एवं 'हैण्ड ऑफ दी डिपार्टमेन्टों' को लगता है कि साहित्य की प्रासंगिकता' तो गई हाहाकर तो व्याप्त है चारो तरफ। हिन्दी साहित्य की यह एक उत्तर आधुनिक स्थिति है लिट्टेरी कलर्क साहित्य की एक उत्तर आधुनिक परिणति है जो महानगरों, कस्बों और गाँवों तक फैली है, गोस्वामी तुलसीदास ने जैसे अपने जमाने के संन्यासियों के बारे में लिखा था-"नारि मुई गृह सम्पत्ति नाशी। मुड़ मूड़ाय भये संयासी।"

एक मजदूर आठ घण्टे मेहनत करता है अपना पेट पालता है वह ईमानदारी से मानता है कि वह धंधा करता है साहित्यकार मजदूर से भी ज्यादा घटिया धंधो में है वह संस्कृति के उद्योग का एक मजदूर स्वयं को नहीं मानता। सुधीश पचौरी का कहना है कि-"साहित्य और कला मुनाफे से सम्बद्ध हो गयी है वे जितना मुनाफा देती है उतनी ही मूल्यवान है। वह 'यथार्थवाद' हर प्रकार की प्रवृत्तियों को अपने में शामिल कर लेता है जिस तरह पूँजी सब जरूरतों को अपने में समेट लेती है उत्तर आधुनिकता का उत्तर यथार्थवाद भी समेट लेता है।"

उन्नीस सौ नब्बे के आस-पास जब लेखक ने कविता लिखी तो कलर्कों की अनपढ़ जमात चौकीं कि-"अरे! जब हम हू कवि है, और अभी जीवित हैं, तब कविता का अन्त कैसे हो गया ये साला तो सबका अन्त करने पर तुला हुआ है। इस लेखक ने तभी बताया था कि विद्रोह की महानता का वक्त गया मामला उत्तर आधुनिक हो रहा है लेकिन अभिधा तक समझने वाले 'लिट्टेरेरी' कर्लक हैरान परेषान हुए और कुछ तो आज तक हैं और 'मेरे वतन' पर ईर्ष्या के आँसू बहाते जब भी किसी छोटी पत्रिका में दिख जाते है, लेकिन अब उनमें से हर उत्तर आधुनिक होना चाहता है यानि वहीं 'मैं' 'मैं केवल' 'मैं यह सरोकार है।"

उत्तर आधुनिक स्थितियों ने जब महानता के नाटक को नष्ट किया तो उसके बीच से दलित और स्त्री विमर्ष निकले। साहित्य के महान और स्वतः सिद्ध केन्द्रवाद के नमूने टूटने के बाद दलित केन्द्रों ने साहित्य की अवधारणा के केन्द्र को हिला दिया। शास्त्र में विखण्डन निकला और उससे साहित्य के इतिहास के चले आते स्वरूप को तहस-नहस कर दिया। कथित सरोकारों की इसलिए भी धज्जियाँ उड़ी। साहित्य की प्रासंगिकता बदल गयी, अब साहित्य में दलित जाति प्रसंग उठने लगे, स्त्री लिंगीय के प्रसंग उठने लगे। ये प्रसंग फिर अध्ययन, समझ और कपट कर विचार माँगते है लेकिन समझ, पूँजीवाद की ऐसी उत्तर आधुनिक चंचलता है कि बड़े से बड़े लेखक की सतह से गहराई में नहीं जाने दे रहा। साहित्यकारों की एक विराट जनसंख्या इन दिनों नितान्त अप्रासंगिक और मतिमंद नजर आती है। पिछड़ी हुई नजर आती है ज्ञान के निर्माण के क्षेत्र से वह अचानक बाहर हो गयी है। इतिहास से बाहर और असंगत हो गयी है।

साहित्य पहले ज्यादा बिकने लगा है किताबें ज्यादा बनने लगी है, अब सचमुच कोई भी कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है। लेट-पूँजीवाद ने जो सांस्कृतिक बाजार रूपी जनतंत्र दिया है, उसमें सबके लिए जगह हो गयी है अब साहित्यकार गरीब नहीं दिखता और थोड़े दिन में साहित्य की प्रापर्टी डीलिंग के बाद रोटी मिलने लगती है, शराब मिलने लगी है, वह पत्रकारिता करने लगता है और भी धंधे करने लगता है। साहित्यकार के पीर फकीर होने की 'इमेज' अब खत्म हो चली है, हाँ अब उस का नाटक कहीं-कहीं अवश्य बचा है यही उसका उत्तर आधुनिकतावादी पाखण्ड है।

साहित्य के क्षेत्र में कला की उच्च निम्न श्रेणियाँ आधुनिकतावाद की देन है। कला में उच्च और निम्न कुछ नहीं होता। यह विचार उत्तर आधुनिक विचार है इससे वे लोग उपेक्षित है, दमित-दलित है सब बराबरी की बातें हैं दलित या स्त्री साहित्य विमर्ष ऐसे ही विमर्ष है। उत्तर आधुनिकता के इतिहास में राजा और रंक शब्द बराबर है। इन्द्रनाथ चौधरी का कथन है-"उत्तर अधुनिकता के युग में स्वाभाविक बनने, भारतीय रहने,

सामान्य जन के निकट आने और सामाजिक रूप से चेतन होने का प्रयास हो रहा है वस्तुतः उत्तर आधुनिकता ने भारतीय होने की भावना जगा दी है। अब हमारे पास एक दलित साहित्य है, स्त्री साहित्य है जो एक समुदाय में उत्पीड़न को धोखा देता है और समाज में पिछड़े एवं जाति निष्कासित लोगों के लिए न्यायपूर्ण एवं यथार्थवादी भविष्य सुनिष्चित करने की माँग करता है। अब लेखक इस विषाल देष के उपेक्षित क्षेत्रों के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हैं और अपने जीवन अनुभवों के बारे में लिखते हैं।'' 'मीड़िया' जिसे उत्तर आधुनिकता की देन कहा जा सकता है साहित्य को समाप्त कर देने पर तुला है। देवेन्द्र इस्सर कहते हैं-''बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दषक में स्थिति गंभीर बयान की जाती है चारो ओर से यह आवाज सुनायी दे रही है कि साहित्य अर्थात् शाब्दिक संरचना का समस्त माध्यम समाप्त होने जा रहा है साहित्य विलुप्त हो रहा है।'' अलविन्द फरनेन ने एक लेख लिखा-विषय और शीर्षक था 'साहित्य की मृत्यु' और डेनियल वेल का लेख छपा 'एण्ड ऑफ आइडियोलॉजी'। कुछ वर्ष पूर्व फ्रान्सिस फूकोयामा ने अपनी थीसिस इतिहास का अन्त प्रस्तुत की, यानि आधुनिकतावाद का कोहरा छट चुका है और अस्तित्ववाद का स्थान 'अस्तवाद' ने ले लिया है। बीसवीं शताब्दी का अन्तिम दषक अन्तवाद का दषक है।''

उत्तर आधुनिकयुग ने जनसंचार के प्रभाव के कारण साहित्य का सिमटता जा रहा है। साहित्य की जरूरत किसी को भी नहीं। नाई, धोबी, मजदूर, किसान, अभियंता, सरकारी कर्मचारी, सैनिक-सिपाही, डॉक्टर, रिक्षावाला व राजनीतिज्ञ किसी के लिए मेघदूत, हेमलेट, साहनामा, ओडिसी, दीवाने-गालिब या कामायनी की जरूरत नहीं। सब लोग अपने-अपने क्षेत्र में इनके वगैर काम कर सकते हैं। जीवन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं और सुख-सुविधा की जिन्दगी वसर कर सकते हैं। साहित्य जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या नहीं। सामान्य लोगों के लिए जिनमें अभिजात्य वर्ग भी शामिल है, धनी-निर्धन, मध्यवर्ग, षिक्षित-अषिक्षित, युवा-बृद्ध, स्त्री-पुरूष किसी के लिए साहित्य का कोई महत्व नहीं। शायद कुछ लेखकों को छोड़कर साहित्य किसी को ख्याति पद-प्रतिष्ठा, धन लोकप्रियता, सुख-सुविधाएँ कुछ भी नहीं दे सकता जब तक कि लेखक किसी समृद्ध शक्तिषाली व्यवस्था से संयुक्त न हो जाय या साहित्य को मनोरंजन की सतह पर न ले जाय। यही कारण है कि लेखक और जनसाधारण में प्रायः एक सामाजिक और मानसिक फासला रहा है। स्पष्ट है कि जब किसी राष्ट्र की संस्कृति क्रिकेट, फिल्म और टेलीविजन तक सीमित हो जायेगी तो परिस्थिति इससे बेहतर नहीं हो सकती है।

निष्कर्ष:

उत्तर आधुनिकता कई वैचारिक पद्धतियों का साहित्यिक चिन्तन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इसमें नव इतिहासवाद, सांस्कृतिक अध्ययन, अधीनस्त अध्ययन तथा नारीवाद शामिल है। ये सब विचार पद्धतियाँ साहित्यिक पाठ को असाहित्यिक दृष्टिकोण, ऐतिहासिक, समाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक नारीवाद, दलित चेतना आदि से देखती है और इसी दृष्टिकोण से उसका मूल्यांकन करती है।

संदर्भ:

१. सुधीष पचौरी, 'उत्तर आधुनिक साहित्य विमर्ष' नई दिल्ली : वाणी प्रकाषन, १९९६-२०००, पृ. ७
२. देवेन्द्र इस्सर, 'उत्तर आधुनिक साहित्य और संस्कृति की नयी सोच' नयी दिल्ली : इन्द्रप्रथ प्रकाशन, १९९६, पृ.२९
३. देवेन्द्र इस्सर, 'साहित्य सिद्धांत और समालोचना' नयी दिल्ली : एम०एच०डी० ५ इग्नु, २००१, पृ.१२०
४. मार्डन लिटरी थ्यूरी इडिटेड वाई वेंग एण्ड राइस' पृ. ३०७
५. देवेन्द्र इस्सर, 'साहित्य सिद्धांत और समालोचना' पृ.१२०
६. सुधीष पचौरी- उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनावाद' दिल्ली : हिमांचल पुस्तक भण्डार १९९४, पृ १४
७. रेमण्ड विलियम्स, 'द कन्ट्री एण्ड द सीटी', लंदन प्रकाषन, १९८५
८. रोषनी साहनी, 'बाम्बे मोजेक ऑफ मार्डन कल्चर, १९८५